

स्वानुभूतिप्रकाश

वीर संवत-२५४६ : अंक-२६४, वर्ष -२४, नवम्बर-२०१९

आषाढ कृष्ण २, सोमवार, दि. ४-७-१९६६, योगसार पर
पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी का प्रवचन,
गाथा-७०, प्रवचन-२५

७०, निर्मोही होकर आत्मा का ध्यान कर।
एक्कुलउ जड़ जाइसिहि तो परभाव चएहि।
अप्पा झायहि णाणमउ लहु सिव-सुख लहेहि॥ ७०॥
यदि तू अकेला ही जायेगा... हे आत्मा! तू अकेला देह, परिवार सबको छोड़कर जायेगा तो राग-द्वेष-मोहादि परभावों को त्याग दे। भगवान! पर में राग-द्वेष, पुण्य -पाप के भाव और पर में मोह छोड़कर अपना शुद्ध स्वभाव... योगसार है न! अपना शुद्ध पवित्र स्वभाव का अन्दर ध्यान कर। उसमें लौ लगा दे तो परभाव छूट जायेंगे। ज्ञानमय आत्मा का ध्यान कर। भगवान आत्मा ज्ञायक..., ज्ञायक..., ज्ञायक..., जान-नेवाला..., जाननेवाला..., जाननेवाला..., जाननेवाला... यह जाननेवाला चैतन्य वह मैं हूँ। इसके अतिरिक्त कोई रागादि, (वह मैं नहीं हूँ)। जहाँ-जहाँ ज्ञान, वहाँ-वहाँ मैं; जहाँ-जहाँ ज्ञान नहीं, वहाँ-वहाँ मैं नहीं। रागादि, दया-दान-भक्ति-व्रत, यात्रा का विकल्प उत्पन्न होता है, वह आत्मा नहीं है, वह तो राग है। जहाँ-जहाँ ज्ञान, वहाँ-वहाँ आत्मा। जहाँ-जहाँ ज्ञान नहीं तो राग में यह ज्ञान नहीं है; (इसलिए वह मैं नहीं हूँ) समझ में आया? यह पुण्यपरिणाम है, वह ज्ञान नहीं है। जहाँ ज्ञान नहीं है, वहाँ आत्मा नहीं है। समझ में आया? बहुत सूक्ष्म, भाई! आत्मा... आत्मा।

भाई! आत्मा तो चैतन्य ज्योत है न! चैतन्यज्योत है।

जहाँ-जहाँ चैतन्य है, वहाँ-वहाँ आत्मा है; और जहाँ-जहाँ रागादि उत्पन्न होते हैं, वहाँ चैतन्य नहीं है। आहा...हा...! समझ में आया? ऐसा अपना चैतन्यमय स्वरूप, रागादि अचेतन से अत्यन्त भिन्न है - ऐसा जानकर अपने स्वरूप की एकाग्रता करना, उसका नाम योगसार है। कहो, समझ में आया? तो तू शीघ्र ही मोक्ष का सुख प्राप्त करेगा। लो, आचार्य कहते हैं कि हे शिष्य! यदि तुझे यह निश्चय हो गया है कि तू एक दिन मरेगा, तब तुझे परलोक में अकेला ही जाना पड़ेगा; कोई भी चेतन या अचेतन पदार्थ तेरे साथ नहीं जायेंगे। जिनसे तू राग करता है, वे सब यहाँ ही छूट जायेंगे, जिनसे तू राग करता है कि यह मेरे पिता, मेरी माता, मेरी स्त्री, मेरा परिवार, मेरा पुत्र, मेरा मकान, मुनीम (वे सब) जिनके प्रति तू राग करता है, वे सब छूट जायेंगे। समझ में आया? तब तेरा उनसे राग करना वृथा है। जिनके प्रति तू राग करता है, वे वस्तुएँ तो छूट जायेंगी, तेरे साथ तो आयेंगी नहीं, इसलिए तेरा राग वृथा है। तेरे साथ तो वे परपदार्थ आते नहीं हैं। ऐसे क्षणभंगुर पदार्थों से राग करना, शोक व दुःख का कारण है। ठीक लिखा है।

इसलिए तू अब ऐसा काम कर कि जिससे तुझे स्थिरता प्राप्त हो... ध्यान, ध्यान कहा न? ऐसा कर कि जिसमें आत्मा अपनी ज्ञानभूमिका में आ जाये। समझ में आया? ऐसा काम करो कि चैतन्य भगवान आत्मा अपनी ज्ञानभूमि में आ जाए-

गा। राग-विकल्प आदि भूमि आत्मा की नहीं है। समझ में आया? अविनाशी मोक्ष का अनुपम सुख प्राप्त हो... इत्यादि बहुत लिखा है। मृत्यु आने से पहले ही तू ऐसा प्रयत्न कर ले, वह तेरे लिये योग्य है। तुझे योग्य है कि देह छूटने से पहले यत्न कर! देह छूटेगी उस समय यत्न नहीं होगा। घर जलेगा तब कुएँ में से पानी निकालूँगा, नहीं निकलेगा; घर जल जायेगा। देह छूटने का अवसर आया, अब धर्म करो।

क्या धर्म करे?

मुमुक्षु : मरने से पहले बसीयतनामा कर लेना?

उत्तर : मरने से पहले आत्मा का यत्न करना। बसीयतनामा क्या करे? मर जाये वसीयत में घुस जाना है इसे? मरने से पहले आत्मा का यत्न करना - ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

मानव शरीर से ही शिवपद मिल सकता है। देव, नारकी, पशु के शरीर में रहकर कभी भी शिवपद प्राप्त नहीं हो सकता। यह अवसर गँवाना योग्य नहीं है।

वह उपाय यही है कि जो-जो द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव अपने नहीं हैं, उन्हें पर समझकर उन सबसे राग हटा ले। क्या कहते हैं? देखो! अपने से परद्रव्य भिन्न, परक्षेत्र भिन्न, परदशा भिन्न, परभाव भिन्न है, तो जो अपने से परद्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव है; ऐसा समझकर सबसे राग उठा ले। इन देव-शास्त्र-गुरु की ओर से भी राग उठा ले - ऐसा कहते हैं। आहा...हा...! है? पानी में 'गुणवन्त' अकेला मरा होगा, तब फूलचन्दभाई को पुकार किया होगा? कि फूलचन्दभाई नहीं मिलते, अरे...! यहाँ कोई बापू नहीं मिले, अकेले जाना? आहा...हा...! अकेले अन्दर में घुस कर अकेला ध्यान करे तो कोई विघ्न करे ऐसा है? है? मेरा ज्ञान, मेरा ज्ञान, मेरा ज्ञान... लो! 'सेठिया' कहते हैं न? सेठिया नहीं? मेरा ज्ञान, मेरा ज्ञान। यह ज्ञानस्वरूप आत्मा जान-नेवाला है, वह जाननहार स्वरूप भूमिका मेरी है। जितने रागादि

उत्पन्न होते हैं, वह मेरी भूमिका नहीं है। मेरे स्थिरता की वह जगह नहीं है। आहा...हा...! बाहर तो स्थिरता करने का नहीं है, अन्दर में भी दया, दान, व्रत, भक्ति के तप के भाव आते हैं, उसमें ठहरने की भूमिका नहीं है; वह तो उसमें से निकलने की भूमि है। अपना शुद्धस्वरूप ज्ञानभगवान, जिसमें महान परम शान्ति और आनन्द भरा है। ऐसे प्रभु आत्मा में रुचि-दृष्टि करके

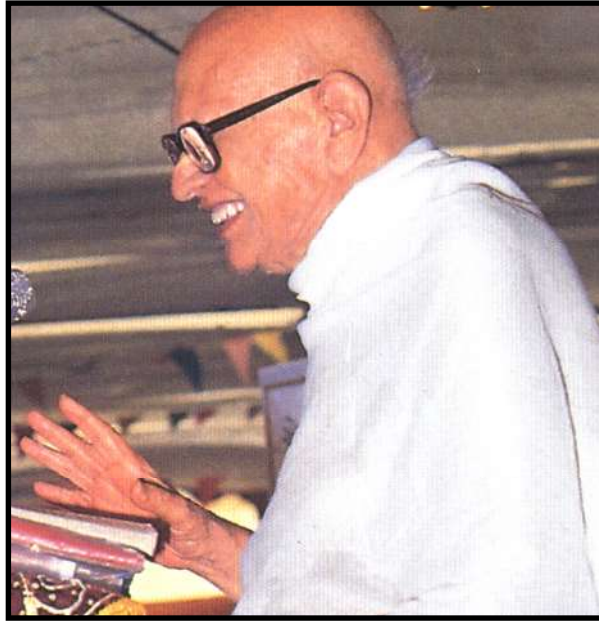
उसे स्थिरता की भूमि जानकर उसमें स्थिरता करना, वह स्वयं से अकेले से होती है (उसमें) किसी की सहायता-मदद नहीं है। ओहो...! (सब ओर से) राग उठा ले।

केवल अपने ही ज्ञानस्वरूपी आत्मा के द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव को अपना जानकर उसमें ही परम रुचि-वान हो जा।

अब इसका खुलासा करेंगे, हाँ! उसका ही प्रेमी हो जा, उसमें ही मग्न रहने का, उसके ही ध्यान का अभ्यास कर, आत्मा का रस पीने का

उद्यम कर.. बाद में खुलासा करेंगे। मेरा आत्मा अखण्ड अभेद एक द्रव्य है। देखो, यह द्रव्य। मैं अभेद अखण्ड पदार्थ आत्मा हूँ, वह मेरा द्रव्य / वस्तु। द्रव्य अर्थात् पैसा? ऐ...इ...! असंख्यात प्रदेशी क्षेत्र है... असंख्य प्रदेश, वह मेरा क्षेत्र है; बाहर के मकान, मकान का क्षेत्र (मेरा नहीं है)। 'राणपुर' का क्षेत्र, 'इन्दौर' का क्षेत्र, 'लाडनू' का क्षेत्र...! रतनलालजी! यह क्षेत्र किसका है? वह तो पर का है, अपना क्षेत्र असंख्य प्रदेश है। असंख्य प्रदेश अपना क्षेत्र है। अपना अखण्ड द्रव्य वह अपना द्रव्य है।

और समय परिणामन काल है। अपनी एक समय की परिणामन दशा वह अपना काल है। दिवस, पहर, रात्रि, वह कोई अपना काल नहीं है। समझ में आया? द्रव्य की अपनी वर्तमान परिणति - अवस्था, एक समय की दशा, वह अपना काल है;



दूसरा अपना काल नहीं है। ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्यादि शुद्धभाव हैं... द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव लिये। मुझमें ज्ञान-दर्शन आनन्दादि त्रिकालभाव हैं। वह शुद्धभाव मेरा भाव है। शुद्धभाव मेरा भाव है, वर्तमान अवस्था मेरा काल है; असंख्य प्रदेश मेरा क्षेत्र है, अखण्ड द्रव्य मैं वस्तु हूँ, समझ में आया? यही मेरा सर्वस्व है। लो, कर्म-संयोग से होनेवाले राग, द्वेष, मोह, भाव सङ्कल्प-विकल्प-विभाव मतिज्ञानादि चार ज्ञान आदि सब पर हैं। कर्म के संयोग से दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, काम, क्रोध (भाव हों), वे सब भाव मेरे आत्मा से भिन्न है - ऐसे श्रद्धा, ज्ञान करना। सङ्कल्प-विकल्प और विभाव मतिज्ञानादि चार,... लो! इस ओर हैं न? भाई! कुछ समझ में आया? मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधि, मनःपर्याय भी एक समय की पर्याय विशेष है। सामान्य स्वभाव त्रिकाल से वह भिन्न है। जिन-जिन भावों में पुद्गल का निमित्त है, वे सब भाव मेरे निज स्वभाविकभाव नहीं हैं... लो! जिस भाव में कर्म का निमित्त है, वह मेरा स्वभावभाव नहीं है, सब पर है। आहा...! राग-द्वेष तो पर; पुण्य-पाप, दया-दान का भाव पर, परन्तु निमित्त की अपेक्षा रखकर क्षयोपशम ज्ञानादिक

हैं, वे भी पर हैं। मैं त्रिकाल ज्ञान-चिदानन्दस्वरूप हूँ - ऐसी दृष्टि करना, ऐसी श्रद्धा करना और उसका ज्ञान करना, वही अपना स्वभाव है। समझ में आया? मैं तो एकाकार परम शुद्ध स्वसं-वेदनगोचर एक अविनाशी द्रव्य हूँ। भगवान आत्मा स्वसंवेदन - अपने ज्ञान से ज्ञान में जानने में आता है। ज्ञान अपने ज्ञान से ज्ञान जानने में आता है - ऐसा स्वसंवेदन-स्व से प्रत्यक्ष ज्ञान से प्रत्यक्ष होनेवाला मैं आत्मा हूँ, उसका नाम आत्मा। रागादि पर है उनके साथ मेरा सम्बन्ध नहीं है। ओ...हो...! समझ में आया?

समयसार का दृष्टान्त दिया है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र एकतारूप ही एक निश्चित मोक्षमार्ग है... एक ही मोक्षमार्ग है। व्यवहार-व्यवहार मोक्षमार्ग नहीं हैं। भगवान आत्मा पूर्ण चैतन्यभाव शुद्ध उसका अन्तर सम्यग्दर्शन, उसका निर्विकल्प ज्ञान, उसकी वीतरागी पर्याय (हो) वह एक ही मोक्षमार्ग है। दो मोक्षमार्ग नहीं हैं। जो कोई अन्य द्रव्यों का स्पर्श न करके एक इस ही आत्मामयी भाव में ठहरता है, उसी को निरन्तर ध्याता है। उसको चेतता है, उसी में निरन्तर विहार करता है... वह शीघ्र मोक्ष को प्राप्त करता है।

करुणासागर पूज्य भाईश्री 'शशीभाई' की ८७वीं जन्म-जयंती

मुमुक्षुजीवों के परम तारणहार पूज्य भाईश्री शशीभाई का आगामी ८७वीं जन्म जयंती महोत्सव मार्गशीर्ष सुदी-४, दि. ३०-११-१९ से मार्गशीर्ष सुदी-८, दि. ४-१२-१९ पर्यंत अत्यंत आनंदोल्लासपूर्वक मनाया जायेगा। इस प्रसंग पर मंडल विधान पूजन, पूज्य भाईश्री के ऑडियो एवं विडीयो सी.डी. प्रवचन, पूज्य गुरुदेवश्री के विडीयो सी.डी. प्रवचन, पूज्य बहिनश्री चंपाबहिन की तत्त्वचर्चा, भक्ति, सत्संग, सांस्कृतिक कार्यक्रम रहेंगे और दि. ३-१२-२०१९ के दिन जिनेन्द्र रथयात्रा का कार्यक्रम रहेगा। इस प्रसंग पर आनेवाले मुमुक्षु ट्रस्ट के कार्यालय में यहाँ पर पहुँचने की तारीख लिखें, जिससे उनकी आवास एवं भोजन की समुचित व्यवस्था हो सके।

कार्यक्रम स्थल :- श्री शशीप्रभु साधना-स्मृति मंदिर, प्लोट नं. १९४२-बी, शशीप्रभु चोक, रूपाणी सर्कल के पास, भावनगर-३६४००१

संपर्क : श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट, ५८०, जूनी माणेकवाड़ी, पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी मार्ग, भावनगर-३६४००१.

ट्रस्ट के इस स्वानुभूतिप्रकाश के हिन्दी अंक (नवम्बर-२०१९) का शुल्क

स्व. श्री शिवलालजी मगनलालजी सिंघवी, डबोक (उदयपुर), ह. श्री सुमतिलाल शिवलाल शाह, यु.एस.ए.

के नाम से साभार प्राप्त हुआ है, जिस कारण से यह अंक सभी पाठकों को भेजा जा रहा है।

पूज्य भाईश्री शशीभाई द्वारा परमागमसार
ग्रंथके ८४ वचनामृत पर भाववाही
प्रवचन, दि.२२-१०-१९८२, प्रवचन
क्रमांक-९ (विषय : मार्गदर्शन)



प्रश्न :— स्वरूप का अनुभव तो हुआ नहीं और शुभ को हेय जाने तो क्या स्वच्छन्दी न हो जायेगा ?

उत्तर :— शुभराग को हेय जानने से शुभराग नहीं छूटता है। स्वभाव का माहात्म्य भासित होने पर शुभराग का माहात्म्य छूट जाता है, परन्तु शुभराग नहीं छूटता। शुभराग तो भूमिका अनुसार, अपने कालक्रम में हुए बिना नहीं रहेंगे। वस्तु का जैसा स्वरूप है वैसा यथार्थ ज्ञान करने से स्वच्छन्दता नहीं हो सकती। ८४.

८४. प्रश्न किया है कि 'स्वरूप का अनुभव तो हुआ नहीं और शुभ को हेय जाने तो क्या स्वच्छन्दी न हो जायेगा?' ऐसा कहते हैं। आप ऐसा कहते हो कि शुभ हेय है। शुद्धता की प्राप्ति की अपेक्षा से, अशुभ की प्राप्ति की अपेक्षा से नहीं। परन्तु शुद्ध स्वभाव की प्राप्ति की अपेक्षा से आप ने शुभ को हेय कहा परन्तु यहाँ हमें एक डर है, एक भय है कि अभी शुद्ध की प्राप्ति हुई नहीं, स्वरूप का अनुभव हुआ नहीं है और अनुभव होने से पहले शुभ को हेय जानेंगे तो स्वच्छन्द नहीं हो जायेगा ? इतना सवाल है। अथवा ऐसे दृष्टान्त, ऐसे प्रसंग भी देखने में आते हैं कि जीव ने शुद्ध की प्राप्ति न की हो, शुद्ध की प्राप्ति न की हो और शुभ को हेय जानने लगे और स्वच्छन्दी हो गये हो। यह तो ठीक नहीं है, ऐसा हो यह तो ठीक नहीं है।

अब प्रश्न का तात्पर्य क्या है यह देखना चाहिये। ऐसा करने से ऐसा हो और ऐसा करने से ऐसा हो, करना क्या, यह सब दिक्कत है। कहते हैं कि स्वच्छन्दी होना यह विपरीतता अवश्य है, स्वच्छन्दी होना यह अवश्य विपरीतता है और विपरीतता तो कोई भी भूमिका के उपदेश से विपरीतता होनी संभवित है। इस प्रकार विचार करने से कोई भी प्रकार के उपदेश का अवसर नहीं रहता। कोई भी उपदेश में से विपरीतता हो सकती है, लाईये कोई भी। क्योंकि

उपदेश में तो उपदेशात्मक भाषा ही आती है। प्रथम तो कोई भी प्रकार के उपदेश में जो उपदेशात्मक भाषा आती है, उसमें ऐसा करना और ऐसा न करना (ऐसा) विधि और निषेध से उपदेश दिया जाता है। तो मूल में शुद्ध परिणामन में तो परिणाम का ही कर्तव्यत्व नहीं है। जो कोई शुद्ध परिणाम है वह तो अकर्तापने, सहजपने शुद्ध हों और वर्ते। उसमें करना, न करना यह तो विपर्यास है। कर्तृत्व स्वयं ही विपर्यास है। वहाँ से लेकर सर्व बाह्य क्रिया में तो राग सहित ज ब ह्य क्रिया होती है, तो उसमें राग का उपदेश का सवाल हो जायेगा। इस प्रकार किसी भी भूमिका में विपर्यास होने की संभवितता तो है। उसका निषेध नहीं कर सकते। विपर्यास की संभवितता का निषेध नहीं कर सकते। परन्तु किसे विपरीतता हो और किसे विपरीतता न हो, यह विषय पहले यथार्थपने समझ लेना चाहिये, ऐसा है।

विपरीतता किसे आती है? कि जिसे छूटना नहीं है, बंधना है उसे कहीं से भी विपरीतता आयेगी। परन्तु जिसे छूटना है और कोई भी हिसाब से बंधना नहीं है उसे कहीं विपरीतता नहीं आयेगी। दूसरी रीति से कहें तो जिसे निर्दोष होना है, निर्दोष होंना है उतना ही नहीं परिपूर्ण निर्दोष होना है उसे कोई भी भूमिका में विपरीतता नहीं आयेगी। जैनदर्शन का प्रथम सिद्धान्त पढ़ा था तब यह विचार आया

था कि एक द्रव्य दूसरे द्रव्य से भिन्न है, ऐसा प्रथम बार पढ़ा तब पहला विचार आया कि दूसरे की दया पालने का जो परिणाम आता है उसका क्या? और ऐसा स्वीकार करने में आये कि एक द्रव्य दूसरे द्रव्य से भिन्न है, ऐसा यदि स्वीकार किया जाये तो यह दया पालने का बंद नहीं हो जायेगा? अब कहने वाले को, एक द्रव्य से दूसरा द्रव्य भिन्न है, ऐसा कहने में दया का प्रकरण नहीं चलाना है। बाद में विचार क्या आया? तुरन्त क्या विचार आया? वहाँ थोड़ी विचारणा लंबाई कि यहाँ कहने वाल को कोई दया का प्रकरण हाथ में लेकर यह बात कहने की शुरू की है, ऐसा तो है नहीं। फिर जो बात यहाँ चल नहीं रही है, वह बात यहाँ लाने का कहाँ सवाल है? एक (बात)। तो कहने वाले को क्या बात कहनी है? कहने वाले का यहाँ कहने का प्रयोजन क्या है? कि यह जीव परपदार्थ में ममत्व करता है। इस जीव का कोई दूसरा पदार्थ इस जीवस्वरूप नहीं होने पर भी, कोई रजकण अथवा कोई दूसरा जीव इस जीवस्वरूप नहीं होने पर भी यह जीव उसमें अवश्य ममत्व करता है और यह ममत्व वस्तु के स्वरूपज्ञान अनुसार टूट जाना चाहिये। मात्र स्वरूपज्ञान रहित जो वैराग्य है वह तो कोई न कोई कषायगर्भित वैराग्य होता है। अथवा तो मानकषाय गर्भित, या मायाकषाय गर्भित, या लोभकषाय गर्भित, या भयकषाय गर्भित कोई न कोई कषाय गर्भित होता है। यह अशुद्धता और मलिनता और दोष के आधार से निर्दोषता हो सकती नहीं। इसलिये यह प्रकार कार्य की सिद्धि का सम्यक् प्रकार नहीं है। यह वैराग्य सम्यक् प्रकार से नहीं है।

परन्तु वस्तु के ज्ञान अनुसार, वस्तु का जो स्वरूप है उस स्वरूपज्ञान के अनुसार, यहाँ वस्तु का स्वरूप स्थापित करते हैं तो उसके साथ-साथ उसमें से अध्यात्म की उत्पत्ति कहाँ होती है? उसमें आत्मा का आधार किस प्रकार आता है? कि परपदार्थ के ममत्व का अभाव होकर पर का आधार छूटता है और स्व का आधार उत्पन्न होता है। ऐसी मुद्दे की और ऐसे प्रयोजन की बात में दया का पोइन्ट (बीच में नहीं लाना चाहिये)। ... और हेय जानने के पर भी वर स्वच्छन्दी होता नहीं, ऐसा उसमें से निकलता है।

अब उत्तर देखते हैं, उत्तर :— 'शुभराग को हेय मानने

से शुभराग नहीं छूटता है।' अब क्या कहते हैं? कि जिसे उपादेय जाना था और माना था उसे, उपादेय नहीं है ऐसा जानने पर और ऐसा मानने पर उसी काल ऐसे शुभराग का पूर्ण अभाव नहीं होता, उसका नाश नहीं हो जाता परन्तु उसके ऊपर का वज्रन छूट जाता है। उतना फ़र्क पड़ता है। होता जरूर है, लेकिन वज्रन नहीं जाता अथवा रस छूट जाता है। 'शुभराग को हेय जानने से शुभराग नहीं छूटता है। स्वभाव का माहात्म्य भासित होने पर शुभराग का माहात्म्य छूट जाता है।' कहाँ तक शुभराग आता है? कि बुद्धिपूर्वक छठवें गुणस्थान पर्यंत पंच महाव्रत, समिति, गुप्ति, अट्टाईस मूलगुण, व्रत, संयम का शुभराग आता है और अबुद्धिपूर्वक दसवें गुणस्थान तक, सूक्ष्मसांप्राय है न, वह लोभ की पर्याय है। सूक्ष्म लोभ अबुद्धिपूर्वक का दसवें गुणस्थान पर्यंत है। ग्यारहवें और बारहवें में तो वीतरागचारित्र है, वहाँ फिर राग की उत्पत्ति नहीं है।

तो कहते हैं कि 'स्वभाव का माहात्म्य भासित होने पर शुभराग का माहात्म्य छूट जाता है,...' स्वभाव को जानने के स्तर में, जो कोई जीव अभी समझन की भूमिका में है उस स्टेज में उसे आत्मा का स्वरूप दर्शाया जाता है और शुभाशुभ राग का भी स्वरूप दर्शाया जाता है। उस शुभाशुभ राग का स्वरूप दर्शाते हुए उसकशास्वभाव और उसका फल इत्यादि दर्शाया जाता है, साथ-साथ स्वभाव को जानने को जानकर शुद्धरूप परिणामते हुए उस शुद्धता का स्वभाव और उसका फल भी दर्शाया जाता है। इस तरह जहाँ समझन का स्तर है वहाँ दोनों प्रकार के भावों की समझ होने पर और वह भी तुलनात्मकबुद्धि से समझन होने पर तुलना की जाती है वहाँ वह अनादि का उसका जो तोल है वह बदलता है। जो शुभराग और शुभराग की क्रिया में उसका वज्रन था वह वज्रन बदल जाता है। शुभराग भी रहता है और शुभराग के अनुसार तो मन-वचन-काया की क्रिया भी रहे परन्तु उसका वज्रन नहीं रहता और उसका माहात्म्य नहीं रहता। ऐसा है।

प्रायः जो कुछ गड़बड़ है वह इस विषय की है। सब संप्रदाय में, धर्म के सब संप्रदाय में और वर्तमानवर्तते जैन संप्रदाय में भी यह परिस्थिति है कि जीव शुभभाव करते हैं उसकी ज्ञानी को इतनी दिक्कत नहीं है, परन्तु शुभभावों

पर जो जीवों का वज़न है उसकी हरगीझ दिक्कत है। यह तकलीफ है। कहते हैं कि नींव का फेरफार इस प्रकार होना चाहिये कि स्वभाव का माहात्म्य आना चाहिये। अनन्त गुण जो स्वभाव में रहे हैं ऐसे गुणों का माहात्म्य आना चाहिये और अवगुण का माहात्म्य छूट जाना चाहिये। शुभराग में भी अवगुण है, दोष है। क्योंकि आखिर में वह राग है।

राग है उससे स्वहिंसा होती है और राग है उससे ही परहिंसा होती है। हिंसा का कोई मूल हो तो वह राग है। परन्तु ऐसा कहते हैं कि पंच महाव्रत में तो पर की अहिंसा है, तो कहते हैं, भले पर की अहिंसा है परन्तु यहाँ स्व की हिंसा अभी खड़ी है। जो जीव हिंसा को मानता है वह आज स्व की करता है तो कल पर की करने में क्यों अटकेगा? और यह द्रव्यलिंगी का देखने में आता है कि निरतिचारपने पंच महाव्रत का पालन करने वाला जीव पर की हिंसा नहीं करता होने पर भी, पर की हिंसा आज नहीं करता है वह कल करने लगता है। भवांतर में पुनः वह परिस्थिति खड़ी होती है। क्योंकि मूल में उसने जो स्वहिंसा है वह चालू रखी है।

हिंसा का और दया का विषय भी एक बहुत बड़ा प्रकरण है, जबरजस्त प्रकरण है। जो जीव स्वयं को न समझे, स्वयं को न जाने और अपनी हिंसा-अहिंसा का और अपनी दया-अदया का, स्वदया के विषय को नहीं समझता वह परदया के विषय को समझता है, यह बात नहीं रहती। दस वैकालिक में तो यह पहला सूत्र है, स्थानकवासी में है न दस वैकालिक? कि जो जीव के स्वरूप को नहीं जानता है और जो अजीव के स्वरूप को नहीं जानता है वह साधु संयम को कैसे जानेगा? ऐसा लिया है। सब से पहले श्रीमद् में यह पढ़ा था। उन्होंने दस वैकालिक का अपनी ही भाषा में अवतरण किया है। उसमें यह बात ली है। अच्छी बात है कि जो जीव के स्वरूप को नहीं जानता, जो अजीव के स्वरूप को नहीं जानता, वह साधु संयम को कैसे जानेगा? कि उसे संयम जानने का प्रश्न नहीं रहता।

कहने का मतलब यह है कि जो जैनदर्शन की मूल नींव स्वरूपज्ञान से शुरू होती है और उस स्वरूपज्ञानपूर्वक निर्दोषता किस प्रकार उत्पन्न होती है उसका पूरा लोजीक

की चुनाई है, उसकी नींव वस्तु का स्वरूपज्ञान, उसमें रहे हुए गुणधर्मों का विज्ञान, अजीव में अजीव के स्वरूप का ज्ञान और उस जड़ रजकण में रहे गुणधर्मों का ज्ञान और इन दोनों पदार्थों को आपस में परस्पर क्या सम्बन्ध है और क्या असम्बन्ध है? कितना लेनादेना है और कितना लेनादेना नहीं है, निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध क्या है? और कर्ता-कर्म सम्बन्ध क्या है? उसके द्वारा उसका पूरा स्पष्टीकरण करके, उस पूरी समझ का और पूरे विस्तार का मोड़ जीव को मूल में से सम्यक् प्रकार से निर्दोषता आये और दोष टले उस पर पूरा विषय ले जाने में आया है।

यहाँ ऐसा कहते हैं कि शुभराग को हेय जानने से कहीं उस वक्त शुभराग छूट जाता है और जीव स्वच्छन्द में चढ़ जाता है ऐसा मानने जैसा नहीं है। परन्तु जब शुभराग हेय है ऐसा समझने में आता है तब, आत्मा का शुद्धस्वभाव उपादेय है और क्यों उपादेय है, कैसे-कैसे गुण अन्दर भरे हैं और कैसी शुद्धता है कि जिस कारण वह उपादेय है, यह बात भी साथ-साथ ही समझने में आती है। इसलिये 'स्वभाव का माहात्म्य भासित होने पर शुभराग का माहात्म्य छूट जाता है...' अथवा तो भ्रम से, गलती से जीवने शुभराग में धर्म माना था, यह जो उसकी मान्यता है वह पूरी पलट जाती है। भले अशुभराग धर्म नहीं है, वैसे ही शुभराग भी धर्म नहीं है परन्तु वीतरागता है वह धर्म है ऐसा उसे समझने मिलता है। और उस शुभराग का माहात्म्य छूट जाता है और स्वभाव का माहात्म्य आता है तब भी शुभराग तो छूटता नहीं। तब भी उसे शुभराग साधकदशा वाले जीव को भी आता है। यदि जिसे शुद्धात्म स्वरूप का अनुभव हुआ है उसे भी शुभराग आता है तो अनुभव नहीं हुआ है और समझन के स्तर में खड़ा है उसे शुभराग नहीं आयेगा, यह बात तो कहीं नहीं रहती।

शुभराग यानी कषाय की मन्दता, शुभराग में क्या होता है? कषाय मन्द होता है। और वह निगोद के जीव को भी होता है। किसे? निगोद के जीव को होता है। निगोद का जीव एकेन्द्रिय अवस्था छोड़कर पंचेन्द्रिय कहाँ-से होता है? वहाँ तो कहीं देव-गुरु और शास्त्र है नहीं। एवं कहीं मन नहीं है कि बुद्धिपूर्वक कोई प्रवृत्ति करे। फिर भी अबुद्धिपूर्वक भी

कषाय की तीव्रता-मन्दता, तीव्रता-मन्दता परिणाम में होती ही रहती है। कोई भी जीव को कभी भी कषाय एकसमान चालू रहे ऐसी कभी नहीं बनता। कोई ऐसा मंद कषाय का पक्षपाती जीव हो कि मैं तो हमेशा मंद कषाय ही करूँ और तीव्र कषाय करूँ ही नहीं, उसे भी कषाय की मन्दता रहे और तीव्रता न हो ऐसा कभी नहीं बनता। यह कषाय का स्वभाव है, तीव्र-मन्द होना यह कषाय का स्वभाव है। मन्द भी हो और तीव्र भी हो, तीव्र हो और मन्द हो ऐसा उसका नैसर्गिक स्वभाव है और वह अनिवार्य है, स्वभाव है इसलिये अनिवार्य है। इसलिये यदि उससे बचना ही हो तो उसे अकेली तीव्रता छोड़नी पुसायेगी नहीं, उसे तीव्रता और मन्दता दोनों को छोड़कर कषाय का अभाव करना चाहिये। तो ही बच सकेगा, अन्यथा तीव्र कषाय से बच सकेगा नहीं। यह कुदरती परिस्थिति है।

मुमुक्षु :— ...

पूज्य भाईश्री :— हाँ, शुद्धस्वभाव प्रगट होनेपर सम्यक् प्रकार से कषाय का अभाव शुरू होता है। जब चतुर्थ गुणस्थान से मोक्षमार्ग की प्राप्ति होती है तब सम्यक् प्रकार से कषाय का अभाव शुरू होता है। और कषाय का अभाव शुरू होता है वह आंशिक, आंशिक, आंशिक अभाव जो है वह वर्धमान होता जाता है और शुद्धता का सद्भाव बढ़ता जाता है। कषाय का अभाव बढ़ता जाता है, सुद्धता का सद्भाव बढ़ता जाता है। अब वह जो शुद्धता का आंशिक सद्भाव हुआ और आंशिक अशुद्धतारूप कषाय रहा तब परिस्थिति इतनी बदलती है कि तीव्र कषाय कम हो जाता है और मंद कषाय बढ़ता है। अब बाकी रहा कषाय, बाकी बचे कषाय की क्या परिस्थिति? कि तीव्र कषाय कम हो जाता है और मंद कषाय बढ़ जाता है। ऐसे धर्मीजीवों में भी कषाय की मन्दता देखकर दूसरे जीवों को, जो शुद्धता को नहीं समझ सकते हैं ऐसे अन्य जीवों को ऐसा होता है कि धर्मी जीव भी कषाय तो मन्द करते हैं इसलिये हमें भी कषाय को मन्द करना चाहिये। तो इस प्रकार कोई कषाय की मन्दता की नकल कक्षरने से धर्म की प्राप्ति हो जाये— शुद्धता की प्राप्ति हो जाये ऐसा तो नहीं बनता।

यहाँ क्या है? कि इस प्रकार शुभभाव छूटता नहीं।

‘शुभराग तो भूमिका अनुसार, अपने कालक्रम में हुए बिना नहीं रहेंगे।’ क्या कहते हैं? जो शुभराग है वह मिथ्यादृष्टि जीव को उसकी भूमिका अनुसार, मुमुक्षु को मुमुक्षुता की भूमिका अनुसार, सम्यग्दृष्टि जीव को अविरत सम्यग्दृष्टि की भूमिका अनुसशार, पंचम गुणस्थानवर्ती जीव को देशविरत गुणस्थान अनुसार और सर्वविरति छठवें गुणस्थान में सादु की भूमिका अनुसार उसे आये बिना नहीं रहेगा। इसलिये उसकी किंमत ऊड़ा दी है, उसे हेय जाना इसलिये वह आता नहीं है ऐसा नहीं है। प्रत्येक जीव को अपनी भूमिका अनुसार आता है।

ज्ञान में और अज्ञान में मात्र इतना अंतर पड़ता है कि ज्ञानी उसकी अशुद्धता, मलिनता, सकषायत्व, अपवित्रता, दोषितता को जानकर उसे किंमत नहीं देते, अज्ञानी उसकी सदोषता नहीं देख सकता है इसलिये उसे निर्दोष जानकर उसी को महत्त्व देता है और इसलिये वह अज्ञानी शुद्धता को प्राप्त नहीं कर सकता। ऐसी परिस्थिति है।

मूल तो प्रश्न के अन्दर एक बात तो यह है कि स्वरूप का अनुभव न हुआ हो तब तक तो शुभ उपादेय रखना चाहिये और अनुभव होनेपर शुभ को हेय जानना चाहिये। परन्तु जब तक शुद्ध की प्राप्ति न हो तबतक शुभ को हेय मानें तो अशुभ में आना हो जाता है। यह एक दहेशत है। ऐसा एक उसके अन्दर प्रश्नकार का ध्वनि है। तो उसे ऐसा कहते हैं कि जिसे शुद्धता प्राप्त नहीं हुई है उसे भी शुभ को हेय जानकर शुद्धता प्राप्त करने का प्रयत्न होना चाहिये। तो उसे शुभ को हेय जानने से कोई दोष की उत्पत्ति(रूप) स्वच्छन्द में आना नहीं होगा। परन्तु जो जीव शुद्धता के प्रयत्न से वंचित रहे, शुद्धता का प्रयत्न न करे और शुभ को हेय जाने तो उसे दोषित होने का संभव है। इतनी बात है उसके अन्दर। क्योंकि प्रश्नकार का प्रश्न है कि हमें शुद्धता की तो प्राप्ति नहीं हुई। इसलिये शुद्ध स्वरूप का अनुभव नहीं हुआ है और पहले शुभ को हेय जान लेंगे तो तकलीफ होगी कि नहीं होगी? कि तकलीफ तभी नहीं होती कि यदि जीव शुभ को हेय जानकर शुद्धता के प्रयत्न में वर्ते तो। यदि शुभ को हेय जाने और शुद्धता के प्रयत्न में न वर्ते तो संभव है कि उसे स्वच्छन्द में आना होगा, ऐसा भी है।

इसलिये श्रीमद्जी ने आत्मसिद्धि में लिया है उसमें से यह निकलता है 'वैराग्यादि सफल तो जो सह आत्मज्ञान, तेम ज आत्मज्ञाननी प्राप्ति तणा निदान।' कहते हैं कि वैराग्यादि जो बाह्य शुभक्रिया है, शुभराग का भाव है, वह आत्मज्ञान सहित जीव को तो सफल है। क्योंकि उसे तो ज्ञान वर्तता है कि यह वैराग्यादि परिणाम आखिर में मन्द राग के परिणाम हैं, वह वास्तविक मोक्षमार्ग नहीं है। तो उसे जो वैराग्य के परिणाम हैं उसका दोष नहीं होगा, उसका अभिमान नहीं होगा कि मैं वैरागी हूँ, मैं त्यागी हूँ। अन्यथा उसके पहले के वैराग्य में वैराग्य का अहंपना आने का संभव है। देखो! वहाँ भी दोष का संभव हो गया न? कोई भी स्तर में विपरीतता तो आ सकती है। वैराग्य धारण करे और वैराग्य का अभिमान आये, त्याग करे और त्याग का अभिमान आये। जो कोई क्रिया करे उस क्रिया का अभिमान आये। प्रत्येक स्थान में दोष तो आयेगा।

यदि जीव को सम्यक् प्रकार से मार्ग हस्तगत न हो तो उसे कुछ न कुछ दूसरी विपरीतता की गड़बड़ उत्पन्न हुए बिना नहीं रहेगी। यह परिस्थिति अनिवार्य है। इसलिये ऐसा कहा कि या तो आत्मज्ञान हो उसे दिक्कत नहीं है अर्थात् शुद्ध स्वरूप का अनुभव हो उसे दिक्कत नहीं है और एक आत्मज्ञान की प्राप्ति का निदान अर्थात् आत्मज्ञान की प्राप्ति का जिसे प्रयत्न हो उसे वैराग्यादि सफल है। उसे दिक्कत नहीं होगी। उसे स्वच्छन्द नहीं होगा। ऐसी बात है।

कहते हैं कि, 'वस्तु का जैसा स्वरूप है वैसा यथार्थ ज्ञान करने से स्वच्छन्दता नहीं हो सकती।' वस्तु के स्वरूप का यथार्थ ज्ञान, ज्ञान करना ऐसा नहीं लिया, वस्तु के स्वरूप का ज्ञान करने से स्वच्छन्दता नहीं हो सकती, ऐसा नहीं, यथार्थ ज्ञान करने से। स्वयं के निजहितार्थ ज्ञान करना है। ज्ञान करने का प्रयोजन कोई जानकारी प्राप्त करनी है ऐसा नहीं है कि जैसे हम पाठशाला में सीखते हैं जीवपदार्थ में कितने गुण? प्रश्न पूछने में आता है न कि अनुजीवी गुण के प्रकार कहां, प्रतिजीवी गुण के प्रकार कहां। चलिये, सच्चा जवाब आया। ऐसा नहीं। उसके हितार्थ समझना है। जीव के स्वरूप को और अजीव के स्वरूप को, समझ करने के पीछे यथार्थ ज्ञान करना है वह निजहित के प्रयोजन सहित

जो ज्ञान करना है, वह ज्ञान सच्चा ज्ञान है और ज्ञान करने में यदि प्रयोजन न हो तो वह ज्ञान भले ही वस्तु के स्वरूप अनुसार, शास्त्र में कहा हो उस अनुसार ज्ञान हो तो (भी) वह ज्ञान सच्चा नहीं है। वह ज्ञान जूठा है, सच्चा नहीं है परन्तु जूठा ज्ञान है।

इसलिये वस्तु का जैसा स्वरूप हो ऐसा उसका सच्चा ज्ञान करने से स्वच्छन्दता हो नहीं सकती। उस स्वच्छन्द से बचने के लिये उसे अपना हित करना है और हित करना है माने निर्दोष होना है और दोष नष्ट करना है, उसे हित करना है ऐसा कहने में आता है। इसके अतिरिक्त हित के लिये दूसरी कोई परिभाषा नहीं है।

हित माने क्या है कि जो हितकर है वह सुखकर है। लिया है? हितकर है वह सुखकर है। राजमलजीने प्रथम कलश में लिया है। 'सार' शब्द का अर्थ लिया है न? समयसार, सार यानी हितकर, और हितकर यानी सुखकर। जिससे सुखी हुआ जाये (वह हितकर है)। तो सुख को निर्दोषता के साथ अविनाभावी सम्बन्ध है। कोई ऐसा तर्क करे कि भाई! बहुत दोष और बहुत पाप करने वाले को हम तो सुखी और मौज करते हुए देखते हैं। तो कहते हैं, तेरी नज़र जूठी है, तुझे देखना नहीं आता है। वह अनन्त दुःखी है। उस समय वह सुखी नहीं है परन्तु अनन्त दुःखी है। लेकिन हमें मौज करते दिखाई देते हैं उसका क्या? मोटर, गाड़ी, बंगला, शरीर की तंदुरस्ती, मजबूत शरीर हो, हैं! उसका क्या? कहते हैं कि भाई! वह कहीं सुख का स्वरूप नहीं है। परन्तु तेरी नज़र में तूने उसे सुख कल्पित किया है और उसने भी कल्पना की है इसलिये वह स्वयं को सुखी मानता है। परन्तु सन्निपाती हँसता हो, क़हक़हा लगाकर हँसता है। मरने से पहले की क्षणों में यह परिस्थिति उत्पन्न होती है कि वह रोग मुकर जाता है और रोग के ऊपर कंट्रोल नहीं रहता तब क़हक़हा लगाकर हँसता है। जो उसके समझदार है, उसके कुटुम्ब में ऐसे समझदार होते हैं तब उसे अन्दर से लगता है कि खलास, अब यह खत्म हो गया। वह हँसता है उसके साथ दूसरे हँसने नहीं लगते। समझता है वह तो रोने लगता है कि खलास, अब यह शान्त हो जायेगा। यह उसकी परिस्थिति है।

इस प्रकार ज्ञानी की नज़र में वे देखते हैं कि भाई, इसको अब तीव्र रस उत्पन्न हुआ है। परपदार्थ का और पाप के अशुभ परिणाम का, अशुद्धता का तीव्र रस उत्पन्न हुआ है उसमें वह स्वयं को खुश मानता है, स्वयं को प्रसन्न मानता है, (वह) बेचारा मर जायेगा। एक बार नहीं मारेगा परन्तु अनन्त बार जन्म-मरण इसके पीछे खड़े हैं। उस पकड़ में, अशुद्धता की पकड़ में अनन्त जन्म-मरण खड़े हैं, उसे ज्ञानी देखते हैं इसलिये उसको करुणा से कहते हैं कि भाई! वह सुख का स्वरूप नहीं है, उसमें सुख नहीं है। सुख तो निर्दो

षता के साथ बँधा है और सदोषता के साथ तो दुःख बँधा है। उसमें से सुख होने का प्रसंग हो नहीं सकता।

इसलिये ऐसा कहते हैं कि यथार्थ ज्ञान करे, वस्तु का सच्चा ज्ञान करे, सत्य स्वरूप का ज्ञान करे और उस सत्य स्वरूप के, आत्मा के सत्य स्वरूप में तो अनन्त निर्दोषता है, अकेले गुण है। उस गुणवान का ज्ञान करे औक्षर उसे अवगुण उत्पन्न हो, यह बात तू कहाँ-से लाया? यह बात बन सके ऐसा नहीं है। यहाँ तक रखते हैं, विशेष लेंगे...

**पूज्य भाईश्री शशीभाई द्वारा लिखित अनुभव संगीवनी में से
ज्ञानदशा-अज्ञानदशा समीक्षा सम्बन्धित चयन किये गये कुछ
खास अध्यात्मरस सभर वचनमृत**

अज्ञानदशामें, पूर्वपुण्यके उदयसे संयोगरूप सामग्री क्षणिक/अनित्य होने पर भी - नित्यरूप भासित होती हैं; जैसे कि 'यह सबकुछ' मेरे साथ हमेशा रहनेवाला है; अतः उसका तथारूप रस - परिणति बन जाती है; जबकि उससे विरुद्ध - ज्ञानदशामें पुण्य-योगसे बाह्य-वैभवमें ज्ञानी होते हैं तो उसमें, खुदकी नित्यतापूर्वक - अनित्यताका भान उन्हें रहता है। अतः उनको इसमें रस नहीं आता, बल्कि ज्ञानपरिणति यथावत् रहती है। (७४)

अन्य जीव और पुद्गलकी चित्र-विचित्र अवस्थाका निमित्त पाकर जगतमें जीव राग-द्वेष / इष्ट-अनिष्ट भाव करते हैं। जब कि सम्यक्ज्ञानमें अंतर्मुखका ध्येय - द्रव्यदृष्टि वर्तती होनेसे, उन-उन परद्रव्यकी पर्याय मात्र ज्ञेयरूप प्रतिभासित होती है। ज्ञान तटस्थ - ज्ञाता भावसे रहता है। ध्येयकी अथात् ध्रुव स्वरूपकी मुख्यता रहती है, इसलिये अन्य ज्ञेय गौणरूपसे भासित होते हैं। यह वीतरागी ज्ञानकला है - अबंध परिणाम हैं, परिणाममें ऐसी चाल होना / ढलन होना-परिणमनशीलता होना, ऐसा ही जिसका मूल स्वभाव है। ऐसे गुण निधान महा पवित्र निज आत्मदेवको अभेद भक्तिसे नमस्कार!!

(९३)

मिथ्यात्वके सद्भावमें मति-श्रुतज्ञानका क्षयोपशम पर रस - वेदन बढ़नेमें निमित्त बनता है; वही क्षयोपशम सम्यक्त्व-के सद्भावमें, कषायरस टूटनेसे व अकषाय स्वरूपमें स्थिरता - रस बढ़ जानेसे, स्वसंवेदनरस / आत्मरस बढ़नेमें निमित्तभूत होता है। - यह स्वसंवेदन पूर्ण स्वसंवेदनका ही अंग है - अनंतसुखका मूल है। साधकदशामें निज परम पदमें सुस्थित आत्मवैभवको देखनेवाला मति - श्रुत है। (१४५)

विपरीत श्रद्धानसे जीवको परमें, सुख नहीं होनेके बावजूद भी, सुखका विश्वास / प्रतीत है। इसलिये पर विषयको सुखबुद्धिसे भोगनेसे सुखका (आभासरूप) अनुभव होता है। परन्तु वास्तविकतामें वह सुख नहीं होनेसे किसीको भी तृप्ति

नहीं होती। आत्मिकसुखकी गटागटीसे (अनुभवसे) प्रतीत होते ही पूरा जीवन बदल जाता है। वह जीव परमें कहीं भी सुखके कारण धोखा नहीं खाता। (२४०)

ज्ञानमयभाव वह अविकार आत्ममय भाव है। जैसे भावमें रागादि विकार करनेका स्वभाव नहीं होनेसे, मोह भावमें (अचारित्र भावमें) निरूत्साह रहता है, अर्थात् उत्सुकता तो नहीं होती, परन्तु वह भाव आत्माको स्वभावमें स्थापित करता है। इससे ऐसा मालूम पड़ता है कि स्वरूपका अज्ञान ही आत्माको रागादिभावमें प्रेरित करता है - उत्साहित करता है, ज्ञायकपनेमें रहनेमें भाव प्रतिबंध नहीं है। पुनः वह ज्ञानमयभाव रागद्वेषके प्रवाहको रोकनेवाला भाव है, और द्रव्यकर्मके प्रवाहका अवरोधक है। (४५०)

सर्वथा असंग अथवा भिन्न आत्मस्वरूपकी अनभिज्ञताके कारण-अज्ञानके कारण जीव कर्मोदयमें प्रवर्तता हुआ 'अपनत्व' का अनुभव करता है, जिससे बंधता है। परमें 'अपनत्व' के अनुभवसे अशक्यको शक्य बनानेकी वृथा प्रवृत्ति - दुःखदायक प्रवृत्ति होती है। संसारकी ऐसी स्थिति है।

मोक्षमार्गमें आने पर 'ज्ञानमें स्व-पना' अनुभवमें आता है, तब वह पूर्वकर्मके उदयसे आ पड़ी परिस्थितिमें, अपनत्वका अनुभव नहीं होनेसे अरस परिणामसे, मुफ्तमें मजदूरी करनेवालेकी तरह, उदय वश प्रवृत्ति (करता) हुआ दिखता है, वह ज्ञाताभाव / साक्षीभाव वर्तता होनेसे, रंजित परिणामके अभावके कारण बंधन (उनको) नहीं है। अपनी प्रगट अव्यापकताके अनुभवसे स्वयं छूटा ही रहता है, अतः बंधन कैसे हो? साथ ही साथ मुक्तभावके बलवानपनेके कारण निर्मलता वृद्धिगत होती जाती है और आत्मा विज्ञानघन होता जाता है। अल्प अस्थिरता रोगवत् जाननेमें आती है, अतः उसमें प्रीति कैसे हो? (४६०)

कर्मोदयमें नया बंध करनेकी शक्ति (निमित्तत्व) है। अतः अज्ञानदशामें इष्ट-अनिष्टबुद्धि होनेसे, परिणाममें कषायशक्ति (रस) विद्यमान रहती होनेसे, कर्मोदयकी 'बंध करनेकी शक्ति' (विषतुल्य) वैसी की वैसी बनी रहती है। जब कि ज्ञानीको भोगके प्रति हेयबद्धि है, इसलिये भोगके परिणाममें कषायशक्ति (रस) का अभाव होनेसे, कर्मोदयकी 'बंध' करनेकी शक्तिका नाश होता है। रागमें एकत्वका अभाव - तद्रूप भेदज्ञानके महा आश्चर्यकारी सामर्थ्यसे कर्मोदयकी बंध करनेकी शक्तिका घात कर देता है (जैसे वैद्य ज़हरकी शक्तिको विद्याके बलसे रोक लेता है जैसे)। आत्माके आनन्द-अमृतका तीव्ररस, कषायरसके ज़हरका घात कर देता है, जिसके कारण उदय कालमें कषायरस सहजरूपसे उत्पन्न (ही) नहीं हो सकता। (४६३)

अनादिसे शुद्धज्ञानमय निज स्वरूपसे अनजान ऐसा यह जीव प्रकृति स्वभावरूप अपना अनुभव करता है; अर्थात् प्रकृति स्वभावमें स्थित रहता हुआ 'मैं'-पनेसे अनुभव करता है, और उसप्रकार उदित कर्मफलको स्वतंत्ररूपसे अध्यासित भावसे भोगता है।

जब इस जीवको भेदविज्ञानसे अपना शुद्ध ज्ञानमय स्वरूप अनुभवमें आता है, तब वह प्रकृति स्वभावसे निवर्तित होनेसे, शुद्ध ज्ञानमय 'स्व'का, एकका ही 'मैं' पनेसे अनुभव करता हुआ, उदित कर्मफलको भिन्न ज्ञेयरूप जानता है, परन्तु उसका 'मैं'-पनेसे अनुभव करना अशक्य होनेसे वेदन नहीं करता। इस तरह परिणामनके दोनों प्रकार जानकरके विवेकी पुरुषोंको विपरीत प्रकारको छोड़कर, सम्यक् प्रकारका सेवन कर्तव्य है। (श्री समयसारजी गाथा - ३१६) (४७२)

देहात्मबुद्धिके कारण मनुष्य जीवनके प्रत्येक स्तरमें मानवी भविष्यके संयोगों / अनुकूलताओंके बारेमें चिंतित - निरंतर चिंतित रहता है और वैसा होना अनिवार्य है क्योंकि अज्ञानके कारण जीव अनित्य पर्यायोंकी नित्यता रखना चाहता है। अतः वर्तमान अनुकूल संयोगों होने पर भी निरंतर दुःख / मानसिक अशांताका ही वेदन करता है। जब कि ज्ञानी तो वर्तमानमें ही उदित संयोगोंसे भिन्न हो चुके हैं और भवउदासी दशा होनेसे, भविष्यकी एक क्षणकी भी (विचार) चिंता उनको नहीं होती। तथापि संयोगोंके प्रति निस्पृहवृत्तिके कारण उन्हें दीनता नहीं होती। चैतन्यकी अनन्त महिमामें डूबे होनेसे, सहजरूपसे उपरोक्त अंतर-बाह्य निरूपाधिदशा रहती है। (४८६)

वर्तमान परिणाम पर दृष्टि होनेसे वस्तु मात्र परिणाम जितनी ही भासित होती है। अतः पुरुषार्थ करूँ, ज्ञान करूँ, इत्यादि पर्यायके कर्तृत्वका अभिप्राय रहता है; जो मिथ्याभाव है। स्वयं वस्तु तो ज्ञान-वीर्यादि अनन्त सामर्थ्यकी खान है; जिसके सन्मुख होने पर खुदमें / स्वरूपमें कुछ कर्तव्य नहीं है ऐसा भासित होता है और कर्तृत्व नहीं होता। रागादि होते हैं वे पररूप भासित होते हैं। जिसका निषेध वर्तता है; परिणाममें सहजता रहती है। (५३६)

आत्मामें प्रति समय उत्पाद-व्यय स्वतंत्ररूपसे चल रहे हैं। वह प्रगट पर्याय स्वयंके मूल स्वरूपको भूलकर परमें 'अहम्' भाव करती है, जो असम्यक् है; जब कि अगर खुदके त्रिकाली असल स्वरूपमें 'अहम्' भावसे परिणामन करें तो सम्यक्त्व प्रगट होवे। यहाँ पर पर्याय भावसे 'स्वाकार - त्रिकाली स्वरूपाकार' भावरूप होने पर भी पर्यायत्वका त्याग नहीं होता है। अतः उस अपेक्षासे निरालंब भी है। त्रिकाली स्वभावमें 'अहम्' भावकी अपेक्षा वह स्वभावावलंबी भी कही जाती है। (५४६)

ज्ञानी ज्ञानवेदनमें, स्वयंका वेदन करनेमें निपुण है। इसलिए राग-द्वेष, सुख-दुःखादिरूप उदयको ज्ञानवेदनसे भिन्न / बाह्य जानकर उसरूप जरा भी परिणामन नहीं करते हैं। वही ज्ञानके ज्ञानत्वका परिणामन है। ज्ञानके वेदनके अनुभवसे विरुद्ध ऐसे समस्त रागादि विभावका अनुभवमें सर्वथा भिन्न ही वेदन करते हैं, क्योंकि स्वयंके एकत्वमें, अन्यका एकत्व होना अशक्य ही है। पुनः पुद्गल पदार्थोंकी कुछएक अवस्थाएँ (रूप-रंग) सिर्फ जाननेका विषय बनती है; वह इसके अनुभवका भ्रम नहीं होता। परन्तु कुछएक अवस्थाएँ, जैसे कि (सुख-दुःख) शांता-अशांता, कड़वा-मीठा, इत्यादि स्वादके प्रकार धारण करती है, वह भेदज्ञानके अभावके कारण, जीवको अभेदता वेदनपूर्वक हो जाती है, जो ज्ञानके अज्ञानत्वका परिणामन है। तब जीव ज्ञान पर ज्ञेयकी असर हुई, ऐसा अनुभव करता है। जो कि अनुभवकी भूल है। जानकारी की भूल समझसे मिटती है, परन्तु अनुभवकी भूल टालनेके लिए बहुत पुरुषार्थ चाहिए। अंतर अवलोकनका सूक्ष्म अभ्यास चाहिए।

प्रथम, अंतर अवलोकनसे पर विषयको भोगनेका रस टूटता है, बादमें एकत्वरूप अनुभवकी भूल जाननेमें आती है, और जाननेके पश्चात् टलती है। समयसारजी गाथा ९२-९३में यह विषय है। (७४८)

स्वरूपके विकल्प द्वारा जब तक स्वरूपमें अहंभाव होवे, तब तक आत्मामय परिणामन नहीं है, परन्तु वेदनपूर्वक स्वरूपलक्ष सहितका परिणामन - वह आत्मामय परिणामन है। जब तक विकल्प है, तब तक बाह्यवृत्ति है, वेदनमें स्व-पने अपना अनुभव वह अंतर्वृत्ति है। वेदनसे ही अस्तित्व ग्रहण है। ज्ञानवेदनके सिवाय मात्र स्वरूपके विकल्पमें अस्तित्व ग्रहण नहीं है। इसलिए मोक्षमार्गीको सविकल्पदशामें, परिणतिमें वेदन है। जितना वेदन है, उतना ही धर्म है और वही मुख्य है। विकल्पकी मुख्यता नहीं है। (७४९)

**पूज्य बहिनश्री की वीडियो
तत्वचर्चा
मंगल वाणी-सी.डी.४ B**



समाधान :- सत् के संस्कार अन्दर गहरे हो, गहरे हो तो काम आते हैं। गहरे नहीं हो तो उससे .. सत् के संस्कार जो वर्तमान में खुदने संचित किये हैं, वह स्वयं अन्दरसे .. दूसरे भव में जहाँ जाता है वहाँ स्फुरायमान होते हैं। यही चाहिये, यह चैतन्य पदार्थ कोई आश्चर्यकारी है, महिमावंत है। उसकी रुचि जिसे गहराईसे लगे, गहराईसे लगे तो वह अन्दरसे प्रगट हुए बिना रहता नहीं। लेकिन वह बाहरसे नहीं आता। अन्तर में खुद को गहराईसे हो तो प्रगट होता है। बाहरसे संस्कार नहीं डालने हैं, अन्दर संस्कार संचित होते हैं।

प्रत्येक द्रव्य का स्वतंत्र परिणमन है इसलिये अपने आप ही सब हो जाता है ऐसा नहीं है। उसे कोई कर नहीं देता, लेकिन स्वयं पुरुषार्थ करे तो हो सके ऐसा है। देव-गुरु-शास्त्र निमित्त हैं, लेकिन उपादान खुद का है। स्वयं करे तो हो सके ऐसा है। गहरे हो तो काम आते हैं। बाकी ऊपर-ऊपरसे हो तो वह काम नहीं आते।

मुमुक्षु :- गहरे संस्कार हो फिर भी साथ में प्रयत्न तो चालू ही रहना चाहिये। संस्कार के आधार पर बैठे नहीं रह सकते।

समाधान :- प्रयत्न तो चालू (रहता है), जिसे अन्दर में रुचि है उसका प्रयत्न चालू ही रहता है। उसका प्रयत्न छूट नहीं जाता। जिसे अन्दर में रुचि है उसका वह प्रयत्न छूट नहीं जाता। प्रत्येक का परिणमन स्वतंत्र है इसलिये जैसे होना होगा वैसे होगा, ऐसा अर्थ नहीं है। उसका पुरुषार्थ के साथ सम्बन्ध है। जैसे होना होगा वैसे होगा। पुरुषार्थ स्वयं करे तो उस अनुसार उसकी परिणमन की गति होती है। पुरुषार्थ उसमें कारण बनता है। अपने आप होता है (लेकिन) पुरुषार्थ के सम्बन्धवाला है। पुरुषार्थ नहीं हो तो होता नहीं। जो मोक्ष की ओर परिणमन होता है वह पुरुषा-

र्थसे होता है। जो होनेवाला होगा वह होगा उसका अर्थ ऐसा नहीं है कि बिना पुरुषार्थ होता है। ऐसा उसका अर्थ नहीं है कि पुरुषार्थ नहीं करे और हो जाये। उसे पुरुषार्थ के साथ सम्बन्ध है। मोक्ष की ओर जो परिणमन हो वह अपने पुरुषार्थ के कारण होता है।

कोई ऐसा कहे कि जैसे होना होगा वह होगा। ऐसे नहीं है। पुरुषार्थ करे। पुरुषार्थ के साथ सम्बन्ध है। क्रमबद्ध और पुरुषार्थ का सम्बन्ध है। जो पुरुषार्थ करे उसका क्रमबद्ध मोक्ष की ओर का होता है। पुरुषार्थ की ओर जिसकी दृष्टि नहीं है, पुरुषार्थ जिसे करने का भाव ही नहीं है तो उसका क्रमबद्ध मोक्ष की ओर होता ही नहीं। क्रमबद्ध का और पुरुषार्थ का सम्बन्ध है। जैसे होना होगा वैसे होगा, पुरुषार्थ का क्या काम है? ऐसा भाव रखे तो ऐसे कुछ होता नहीं। पुरुषार्थ के साथ सम्बन्ध है। भगवानने जिसकी मुक्ति देखी है वह पुरुषार्थसे देखी है। जिसे पुरुषार्थ करना नहीं है और स्वच्छन्दतासे वर्तता है तो उसकी मुक्ति का परिणमन भगवान के ज्ञान में आता नहीं। पुरुषार्थी होते हैं उसका ही परिणमन मोक्ष की ओर होता है। उसे अंतर रुचि हो कि मेरे आत्मा का कैसे कल्याण हो? आत्मा महिमावंत है, यह सब मेरा स्वभाव नहीं है, मेरा स्वभाव भिन्न है, ऐसा भेदज्ञान

करने का प्रयत्न करे। अन्दरसे बार-बार रटन करे, याद करे, चिन्तवन करे, ऐसा करे तो होता है। किये बिना अपने आप होता नहीं। इंतज़ार करता रहे कि जैसे होना होगा वैसे होगा और आ जायेगा। ऐसे नहीं होता। खुद को अन्दर खटक लगनी चाहिये, स्वयं पुरुषार्थ करे तो होता है।

मुमुक्षु :- पुरुषार्थ करे तो ही प्राप्त हो न? माताजी!

समाधान :- पुरुषार्थ करे तो ही प्राप्त होता है, बिना पुरुषार्थ प्राप्त नहीं होता। जिसे अंतर्मुहूर्त में होता है वह पुरुषार्थसे ही होता है। पुरुषार्थ स्वयं की ओर एकदम तीव्रतासे होता है। उसका चैतन्य ओर का पुरुषार्थ एकदम शुरु हो जाता है।

मुमुक्षु :- सनातन धर्म क्या है, समझाइये।

समाधान :- सनातन धर्म? सनातन धर्म यानी जो अनादि का धर्म है, जो आत्मा का धर्म है वह सनातन धर्म है। जो आत्मा का धर्म वह सनातन। सनातन यानी पुराना। पुराना यानी जो अनादिसे चला आ रहा है वह। आत्मा का स्वभाव धर्म है। आत्मा का जो ज्ञानस्वभाव है उस रूप ज्ञानस्वभाव को प्रगट करना, ज्ञायक को ज्ञायकरूप प्रगट करना, वीतराग स्वरूप है उसे वीतरागरूप प्रगट करना वह सनातन धर्म है।

मुमुक्षु :- पुराना..

समाधान :- पुराना जो आत्मा का स्वभाव अनादिशी शाश्वत है उसे प्रगट करना वह सनातन है।

मुमुक्षु :- धर्म का स्वरूप क्या है?

समाधान :- धर्म का स्वरूप-धर्म यानी धर्म आत्मा में है। जो जिसका स्वभाव है वह धर्म है। बाह्यसे जो धर्म कहने में आता है वह शुभभाव है, पुण्यबन्ध का कारण है। भगवान की भक्ति करे, भगवान की पूजा करे, शास्त्र स्वाध्याय करे, शास्त्र पढ़े, तत्त्व के विचार करे वह सब धर्म कहलाता है। वह धर्म पुण्यबन्ध कहलाता है। उससे पुण्य होता है, शुभभाव होता है, उससे देवलोक प्राप्त होता है, भव का अभाव नहीं होता।

भव का अभाव जो अन्दर आत्मा का स्वभाव है, जो जाननेवाला अनादि का ज्ञायक स्वभाव है उसे प्रगट करे तो धर्म होता है। आत्मा में धर्म (है)। लेकिन वह नहीं हो

तबतक विचार करे, वांचन करे ऐसे सब शुभभाव होते हैं। उस शुभभाव को व्यवहारसे धर्म कहने में आता है।

मुमुक्षु :- सच्चा सुख कहाँ है?

समाधान :- सच्चा सुख भी आत्मा में है। आत्मा में ही है, बाहर सुख नहीं है। बाहर जो सुख माना है वह सुख बाहर नहीं है। धन मिले, शरीर अच्छा हो, सब अनुकूलताएँ मिले, मान-सन्मान मिले ऐसा सब होता है वह कोई सुख नहीं है। वह तो कल्पित सुख है। मकान मिले और उसमें सुख माने तो वह सुख नहीं है, वह तो मात्र कल्पना है। बाहर में सुख नहीं है, सुख अन्दर आत्मा में है। बाहर कहीं भी, विकल्पों में, राग में कहीं भी सुख नहीं है। जो वीतरागी भाव अन्दर आत्मा में है उसमें सुख है, उसमें आनन्द है, सब आत्मा में है। बाहर कहीं सुख नहीं है। मात्र भ्रान्ति से माना है कि मुझे बाहरसे सुख मिलता है। सुख बाहर कहीं भी नहीं है। सब कल्पना है। ऐसा सुख शाश्वत नहीं रहता, मात्र कल्पित सुख है, वह आत्मा का सुख नहीं है। मात्र बाह्य संयोग में सुख माना है। वह सुख नहीं है।

सुख आत्मा में है। जो उसका स्वभाव है, आत्मा का सहज स्वभाव है-जानना, देखना, लीनता, चारित्र, अन्दर आत्मा में सुख है, आत्मा में आनन्द है, वह आनन्द आत्मा का कोई अपूर्व है, जिसे उपमा नहीं दे सकते। ऐसा आत्मा में आनन्द और सुख भरा है कि जिस सुख को किसीकी उपमा, कोई देवलोक की या कोई चक्रवर्ती के राज्य की भी जिसे उपमा दे नहीं सकते, ऐसा सुख आत्मा में भरा है। और वह अनुपम है। वह सुख कैसे प्रगट हो? कि आत्मा को पहचाने। यह शरीर मैं नहीं हूँ, यह राग मैं नहीं हूँ, मैं उससे भिन्न हूँ। ऐसे आत्मा को पहचाने, उसका भेदज्ञान हो, उसमें लीनता करे तो वह सुख प्रगट होता है। विकल्प छूटकर आत्मा में लीन हो तो वह सुख आत्मासे कोई अपूर्व आनन्द प्रगट होता है कि जो आनन्द चक्रवर्ती के राज्य में कहीं भी नहीं है। वह सुख आत्मा में है।

मुमुक्षु :- महावीरस्वामी को जब साप दंश मारता है, तब खून निकलने के बदले दूध निकला, ऐसा उन्होंने विश्व को प्रेम किया, ऐसा प्रेम करना हो तो कैसा पुरुषार्थ करना? महावीरस्वामी का हम .. बनाते हैं, साँप उनको दंश मारता

है तब दूध निकलता है तो समस्त विश्व को प्रेम किया। साँप को भी उनके पाससे दूध मिलता है। ऐसा प्रेम करना हो तो हमें किसप्रकार का पुरुषार्थ करना पड़े?

समाधान :- भगवान की वाणी छूटी, उस वाणीसे सबको वीतरागी भावसे उपदेश मिला। भगवान की वाणी ऐसी छूटी, भगवान को इच्छा नहीं थी, लेकिन ऐसी वाणी छूटी कि आप यह धर्म करो। मैं भिन्न हूँ। भगवानने चाहे जैसे उपसर्ग आये उसे बाहरसे सहन किये। उन्होंने राग-द्वेष नहीं किया था, वीतराग थे। उन्हें बाहरसे चाहे जैसे उपसर्ग आये, साँपने दंश मारा या नहीं मारा, लेकिन भगवान को कोई सर्प दंश मारे ऐसा नहीं बनता लेकिन बाहरसे उनको उपसर्ग आये, वह उपसर्ग सहन करने पड़े, परिषह आये, उन्होंने सहन किये लेकिन वे आत्मा में एकदम लीन थे। किसीपर भी उन्होंने राग-द्वेष किया नहीं, वीतराग थे। किसी पर राग किया नहीं, किसी पर द्वेष किया नहीं कि ये मेरा शत्रु है ऐसा भी नहीं माना, ये मेरा मित्र है ऐसा भी नहीं भगवानने माना नहीं। भगवान तो आत्मा में लीन हो गये और वीतरागता प्रगट हुई। ऐसे भगवान की भाँति राग-द्वेष को टाले तो अंतरमेंसे ऐसी समता प्रगट हो। जगत का प्रेम प्राप्त करना वह अपने हाथ की बात नहीं है। अन्दरसे समता

प्रगट करनी अपने हाथ की बात है।

चाहे जैसे उपसर्ग और परिषह आये तो भी अन्दर शांति और समता रखे, वीतरागता प्रगट करे वह अपने हाथ में है। बाहर विश्वर के साथ प्रेम करना वह कर नहीं सकता। किसीका मन कैसा हो, किसीका कैसा हो। स्वयं अन्दर वीतरागता प्रगट करे तो हो सकता है। राग-द्वेष नहीं करे। मैं जाननेवाला ज्ञान हूँ। मेरेमें कुछ नहीं है। मैं तो इस शरीरसे भिन्न हूँ। यह शरीर भी मेरा नहीं है। चाहे जैसे उपसर्ग आये तो भी यह शरीर मेरा नहीं है। मैं तो आत्मा हूँ। ऐसे भाव करे तो अन्दरसे-आत्मामेंसे समता प्रगट होती है। राग-द्वेष खुद टाले तो सब बाहरसे बदल जाये। राग-द्वेष टाले तो। बाहर में फेरफार करना अपने हाथ की बात नहीं है, स्वयं राग-द्वेष टाले।

उसमें आता है कि सर्पने दंश मारा तो दूध निकला। भगवान को बहुत उपसर्ग आये हैं। भगवान तो सर्प के ऊपर खड़े रहकर भगवान ने खेल किये हैं। सर्प उन्हें कुछ नहीं कर सका। लेकिन स्वयं अन्दर वीतराग थे, उन्हें कोई राग-द्वेष नहीं था, आत्मा के ध्यान में थे। ऐसे आत्मा का ध्यान आत्मा को पहचानकर करे तो उनके जैसी वीतरागता प्रगट हो।

नवीन प्रकाशन

पूज्य भाईश्री शशीभाई द्वारा आत्मावलोकन ग्रन्थ पर हुए प्रवचनों का 'आत्मावलोकन प्रवचन (भाग-५)' गुजराती में प्रकाशित हो चुका है। तथापि पूज्य भाईश्री शशीभाईजी की आगामी जन्म जयंति के अवसर पर श्री चिद्विलास ग्रन्थ पर हुए प्रवचनों का पुस्तक प्रकाशित करने की भावना है। जिन मुमुक्षु भाई-बहनों को पुस्तक मँगवानी हो वे श्री अतीन जैन का संपर्क करें। अतीनभाई जैन, मो. ७०४३३७०५०६

पुस्तक मँगवाने सम्बन्धित

जिन मुमुक्षु भाई-बहनों को जो कोई भी पुस्तकें मँगवानी हो, वे निम्नलिखित नंबर पर फोन नंबर पर वोट्स एप करनेकी विनती। अतीनभाई जैन, मो. ७०४३३७०५०६

स्वानुभूतिप्रकाश पत्रिका सम्बन्धित

सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्टकी ओरसे प्रकाशित हो रही स्वानुभूतिप्रकाश मासिक पत्रिकाके एड्रेस सम्बन्धित किसी भी प्रकारका फेरफार, नाम डलवाना, कटवाना इत्यादिके लिये निम्नलिखित नंबर पर अपना ग्राहक क्रमांक लिखकर वोट्स एप करनेकी विनती। प्रशांतभाई जैन, मो. ९३७७१०४८६८

**पुरुषार्थमूर्ति पूज्य श्री निहालचंद्र सोगानीजी द्वारा
साधर्मीओं को लिखे हुए आध्यात्मिक पत्र**

४९

कलकत्ता, २७-१२-१९६३

ॐ

श्री सद्गुरुदेवाय नमः

आत्मारथी.....शुद्धात्म सत्कार।

आपका पत्र यथा समय पर मिला था। कई प्रकार के प्रश्न लिखे, जिन सम्बन्धित योग्यतानुसार संक्षिप्त खुलासा लिखता हूँ :

१. स्वद्रव्य से, पर से अथवा क्षणिक योग्यता से ज्ञान* -

सर्व समाधानों का भण्डार त्रिकाली चैतन्यद्रव्य वर्तमान में ही हूँ; इस में दृष्टि अभेद होते ही, प्रश्नरूप विकल्प की, विकल्पांश से जुदी स्वआश्रित सहज जानन क्रिया होती है, वह क्रिया स्वयं ही समाधान रूप है। जिस में प्रश्न लम्बाने का अभिप्राय नहीं रहता।

यथार्थ उक्त दृष्टि पश्चात् योग्यता का वास्तविक भाव समझ में आता है। योग्यता स्वयं सत् अहेतुक है; जिसको निश्चये न स्वद्रव्य कारण है न पर। यह अपरिणामी द्रव्यदृष्टि समय-समय की योग्यता में फेरफार की बुद्धि नहीं रखती व योग्यता भी दृष्टि के अभेद विषय की ओर समये-समये वृद्धिगत उन्मुख होते-होते पूर्ण समाधानरूप अभेद हो जायेगी, ऐसी निःशंक प्रतीति इस दृष्टि में गर्भित है।

मुनिराज, आचार्य भगवान के पास समाधान हेतु जाते हैं; उस समय भी प्रश्न-विकल्प से छिटकी हुई जानन क्रिया उनको वर्तती रहती है। परन्तु कचासरूप अशक्ति के कारण प्रश्न-विकल्प क्षणिक लम्बाने से प्रश्न-क्रिया होती है। समाधान बाह्य से होगा ही अथवा होना ही चाहिए, ऐसा अभिप्राय मुनिश्री के प्रश्न-विकल्प समय नहीं वर्तता।

इस विषय के स्पष्टीकरण में अध्यात्म व द्रव्यानुयोग संबंधित ग्यारह सिद्धांत समाहित हैं।

२. श्रद्धा व ज्ञान -

श्रद्धा व ज्ञान भिन्न-भिन्न गुण की स्वतन्त्र एक ही काले अहेतुक पर्यायें हैं। मृतक वेश्या का चित्र दृष्टान्तरूपे पुस्तकों में है। भित-भित श्रद्धावाले चार जीवों को ज्ञान में निमित्तरूप तो एक ही विषय है। परन्तु श्रद्धान भिन्न-भिन्न प्रकार का होनेसे भिन्न-भिन्न परिणति है। निश्चय से एक ही जीव को एक ही काले श्रद्धा व ज्ञान की स्वतन्त्र अहेतुक परिणति होती है जो कि एक दूसरे को अकारणीय है। कार्य होनेपर ज्ञान श्रद्धान का कारण हुआ अथवा श्रद्धान ज्ञान का कारण हुआ, ऐसा सम्बन्ध बताया जाता है। ग्यारह अंगधारी मिथ्यादृष्टि धारणाज्ञान में तत्त्व को परोक्षरूपे यथार्थ जानता है परन्तु श्रद्धा की पर्याय में, रुचि में, उसको अभेद पकड़कर प्रत्यक्ष नहीं करता अतः दृष्टि मिथ्या बनी रहती है।

३. पुरुषार्थ -

‘स्वरूप की प्यास.’ प्यास स्वयं पर्याय-स्वभाव है। वीर्य गुण की पर्याय में सदैव पुरुषार्थ होता रहता है। नित्य, सहज, निष्क्रिय, त्रिकाली द्रव्य में दृष्टि अभेद होनेपर जो पुरुषार्थ होता रहता है, वह स्वआश्रित सहज ज्ञानान्दी पुरुषार्थरूप पर्यायस्वभाव है। विकल्पात्मक पुरुषार्थ, असहज, कृत्रिम पुरुषार्थ है। सहज द्रव्यस्वभाव की अरुचि होनेसे पर्याय में सहज पुरुषार्थ नहीं उघड़ता; अतः मिथ्यादृष्टि नियतवादी एकान्ते कृत्रिम पुरुषार्थ करता रहता है। इस ही कारण ‘थवानुं हशे तेम थशे’ इस आशय को कहने का वह यथार्थ अधिकारी नहीं है। उसके अभिप्राय में फेरफार की बुद्धि तो पड़ी रहती है। उसकी स्वतन्त्र योग्यता निरन्तर परावलम्बी वर्तती है व उसे उसमें उत्साह बढ़ता रहता है। यह बात स्वद्रव्य-अवलम्बन करनेवाला ज्ञानी यथार्थ जानता है।

४. (मिथ्यादृष्टि) संसारी जीव स्वरुचि -



रस अनुसार अपनी रसपूर्ति के हेतु अमुक पर को जानता है; अतः इष्ट प्राप्ति में बाधक कारणों से द्वेष करता है। इसका कारण मात्र परावलम्बी रुची ही है, अन्य नहीं।

हम सब नित्य स्व का संगरूप वर्तन करें, यह ही भावना है।

निहालचंद्र

५०

कलकत्ता, २-१-१९६४

ॐ

श्री सद्गुरुदेवाय नमः

आत्मार्थी...शुद्धात्म सत्कार।

आपका ता. १८-१२-६३ का पत्र यथासमय मिला था। मैं यहाँ १७-१२ को वापस पहुँचा था। मार्गमें अधिक रुकनेसे दिल्ली नहीं ठहर सका था।

नित्य शुद्धात्मस्वभावमें दृष्टि अभेदकर, तादात्म्यकर, निर्विकल्पकर, सहज अहम्पनेसे स्वमूर्तिकी स्थापना करो! देह, मन, वाणी, राग व क्षायिक-क्षणिक भावसे भी पार, सूक्ष्म, अति सूक्ष्म सामान्य द्रव्यमयी गठरीरूप होकर जमे रहो! इस नित्यबलकी अधिकायीसे क्षणिक परिणाममें खिसको नहीं! ज्ञान रागसे सहज पृथक् होकर, क्षणे-क्षणे वृद्धिगत होते-होते पूर्ण उघड़ जायेगा। - ऐसे पूज्य गुरुदेवश्रीके आशयको यथार्थ परिणमित कर देना हम सर्व मुमुक्षुओंका सदा सुखानुभवी कर्तव्य है।

महाआनंदका नित्य भोगवटा रहे, यही भावना है।

मोक्षेच्छु निहालचंद्र

५१

कलकत्ता, २०-२-१९६४

श्री सद्गुरुदेवाय नमः

आत्मार्थी...शुद्धात्म सत्कार।

पत्र मिला। परम कृपालु गुरुदेवश्रीके मुखारविंदसे मुझ संबंधी निकले सहज उद्गार आपको अमुक-अमुक स्थानोंके भाईयोंसे ज्ञात हुए सो आप सबने स्वाभाविक प्रसन्नता और उत्साहपूर्वक मुझे लिखे, सो जाने।

मुक्तिनाथकी इस दास प्रत्ये सहज कृपादृष्टि इस बातका द्योतक है कि अति उमंगभरी मुक्तिस्दरी अप्रतिहतभावे, मुझ कृतकृत्यके साथ, महा आनंदमयी अस्खलित, परमगाढ आलिंगनयुक्त रहकर शीघ्रातिशीघ्र कृतकृत्य होना चाहती है।

परम पिताश्रीने हम सब पुत्र मण्डलको अटूट लक्ष्मीभण्डार (दृष्टिरूपी चाबी द्वारा खोलकर) भोग हेतु प्रदान किया है, इसे नित्य भोगो, नित्य भोगो, यह ही भावना है।

तीर्थकरयोग सूचित करता है कि सब सज्जन पुत्रगण इस भोगको निःसंदेह भोगते हुए नित्य अमर रहेंगे।

“स्थानो न क्षायिकभावनां, के क्षायोपशमिक तणां नहीं,

स्थानो न उपशमभावनां, के उदयभाव तणां नहीं.”

‘गुण अनंतके रस सबै, अनुभौ रसके माहिं,

यातैं अनुभौ सारिखौ, और दूसरो नाहिं.”

पृथक्-पृथक् पत्रोंकी पहुँच संभव नहीं, अतः सहज मिलनेपर आप उन भाईयोंको मेरा यथायोग्य स्नेह बोल दें...। सर्व भाईयोंके नित्य आनंदका निरीच्छकपने इच्छुक।

मात्र मोक्ष अभिलाषी

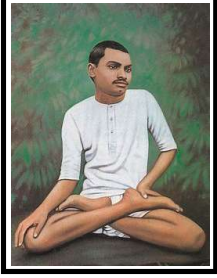
निहालचंद्र सोगानी

मोक्षमार्ग रहस्य प्रकाशक निष्कारण करुणामूर्ति मुमुक्षुजीवों के
परम हितस्वी जिनवाणी मर्मज्ञ
पूज्य भाईश्री शशीभाई की ८७वीं जन्म जयंती महोत्सव प्रसंग पर
कोटि कोटि वंदना!!



निश्चय रत्नत्रय प्राप्त, परमागम-सुधा के रहस्यज्ञ, जिनमार्ग प्रति
अखंड निष्ठावान, जिनकी निष्कारण करुणा का नित्य स्तवन करने में भी
आत्मस्वभाव प्रगट होता है, मोहस्वयंभूरमण समुद्र को भूजा से तीर गये ऐसे
हे प्रखर पुरुषार्थ के स्वामि! भाव अप्रतिबद्धरूप से विचरनेवाले, आपके
प्रति अचल प्रेम और सम्यक् प्रतीति हो, इस भावना सहित आपके चरणों में
भक्ति-पुष्प अर्पण करते हैं!

- 'स्वानुभूतिप्रकाश' परिवार



परम कृपालुदेव श्रीमद् राजचन्द्रजी द्वारा लिखित आध्यात्मिक पत्र

२०६

बंबई, माघ वदी १३, रवि, १९४७

घट परिचयके लिये आपने कुछ नहीं लिखा सो लिखियेगा। तथा महात्मा कबीरजीकी दूसरी पुस्तकें मिल सकें तो भेजनेकी कृपा कीजियेगा।

पारमार्थिक विषयमें अभी मौन रहनेका कारण परमात्माकी इच्छा है। जब तक असंग नहीं होंगे और उसके बाद उसकी इच्छा नहीं होगी तब तक प्रगटरूपसे मार्ग नहीं कहेंगे, और ऐसा सभी महात्माओंका रिवाज है। हम तो दीन मात्र है।

भागवतवाली बात आत्मज्ञानसे जानी हुई है।

२०७

बंबई, माघ वदी ३०, १९४७

यद्यपि किसी प्रकारकी क्रियाका उत्थापन नहीं किया जाता तो भी उन्हे जो लगता है उसका कुछ कारण होना चाहिये, जिस कारणको दूर करना कल्याणरूप है।

परिणाममें 'सत्'को करानेवाली और प्रारम्भमें 'सत्' की हेतुभूत ऐसी उनकी रुचिको प्रसन्नता देनेवाली वैराग्यकथाका प्रसंगोपात्त उनसे परिचय करे; तो उनके समागमसे भी कल्याणकी ही वृद्धि होगी, और वह कारण भी दूर होगा।

जिनमें पृथ्वी आदिका विस्तारसे विचार किया गया है ऐसे वचनोंकी अपेक्षा 'वैतालीय' अध्ययन जैसे वचन वैराग्यकी वृद्धि करते हैं, और दूसरे मतभेदवाले प्राणियोंको भी उनमें अरुचि नहीं होती।

जो साधु आपका अनुसरण करते हैं, उन्हे समय समयपर बताते रहे: "धर्म उसीको कहा जा सकता है कि जो धर्म होकर परिणमे; ज्ञान उसीको कहा जा सकता है कि जो ज्ञान होकर परिणमे। हम ये सब क्रियाएँ, वाचन इत्यादि करते हैं, वे मिथ्या हैं, ऐसा कहनेका मेरा हेतु आप न समझें तो मैं आपको कुछ कहना चाहता हूँ," इस प्रकार कहकर उन्हे बताये कि यह जो कुछ हम करते हैं, उसमें कोई ऐसी बात रह जाती है कि जिससे 'धर्म और ज्ञान' हममें अपने रूपसे परिणमित नहीं होते और कषाय एवं मिथ्यात्व(संदेह) का मंदत्व नहीं होता; इसलिये हमें जीवके कल्याणका पुनः पुनः विचार करना योग्य है और उसका विचार करनेपर हम कुछ न कुछ फल पाये बिना नहीं रहेंगे। हम सब कुछ जाननेका प्रयत्न करते हैं, परन्तु अपना 'संदेह' कैसे दूर हो, यह जाननेका प्रयत्न नहीं करते। यह जब तक नहीं करेंगे तब तक 'संदेह' कैसे दूर होगा? और जब तक सन्देह होगा तब तक ज्ञान भी नहीं होगा, इसलिये संदेहको दूर करनेका प्रयत्न करना चाहिये। वह सन्देह यह है कि यह जीव भव्य है या अभव्य? मिथ्यादृष्टि है या सम्यग्दृष्टि? सुलभबोधी है या दुर्लभबोधी? अल्पसंसारी है या अधिक संसारी? यह सब हमें ज्ञात हो ऐसा प्रयत्न करना चाहिये। इस प्रकारकी ज्ञानकथाका उनसे प्रसंग रखना योग्य है।

परमार्थपर प्रीति होनेमें सत्संग सर्वोत्कृष्ट और अनुपम साधन है; परन्तु इस कालमें वैसा योग होना बहुत विकट है; इसलिये जीवको इस विकटतामें रहकर सफलतापूर्वक पूरा करनेके लिये विकट पुरुषार्थ करना योग्य है, और वह यह कि "अनादि कालसे जितना जाना है उतना सभी अज्ञान ही है, उसका विस्मरण करना।"

'सत्' सत् ही है, सरल है, सर्वत्र उसकी प्राप्ति होती है; परन्तु 'सत्' को बतानेवाला 'सत्' चाहिये।

नय अनंत है; प्रत्येक पदार्थमें अनंत गुणधर्म हैं; उनमें अनंत नय परिणमित होते हैं; तो फिर एक या दो चार नयपूर्वक बोला जा सके ऐसा कहाँ है? इसलिये नयादिकमें समतावान रहना। ज्ञानियोंकी वाणी 'नय'में उदासीन रहती है, उस वाणीको नमस्कार हो! विशेष किसी प्रसंगसे।